

भक्ति के सभी मार्गों में वास्तविक रूप से ईश्वर अनुपस्थित ही रहा है, इसीलिए सगुण भक्ति के तमाम अवतारवादी प्रतीकों के माध्यम से भक्ति साहित्य का अंतिम लक्ष्य अपने समय के मनुष्य की प्रवृत्तियों में बदलाव करना, उसे बेहतर मनुष्य बनाने की कोशिश करना। निर्गुण भक्ति भी इस अर्थ में सगुण है और अपने रूप-गुण-विधान से भरी सगुण भक्ति के दोनों आचाम राम और कृष्ण संबन्धी भक्ति धाराएं। अंततः निर्गुण ही हैं, क्योंकि वास्तविक ईश्वर सगुण और निर्गुण दोनों जगह अनुपस्थित है। इस अर्थ में भक्तिकालीन साहित्य की सभी धाराओं का प्रथम और अंतिम लक्ष्य मनुष्य ही है, इसीलिए भक्ति अपने पूर्ण स्वरूप में एक जन-आंदोलन ही था।

- इसी पुस्तक से



विजया बुक्स
दिल्ली 110032

ISBN : 978-93-81480-87-8



9 789381 480878

भक्तिकाल

वाणी और विचार

सम्पादक डॉ. राजेन्द्र यादव, अवधेश कुमार



भक्तिकाल

वाणी और विचार



सम्पादक

डॉ. राजेन्द्र यादव
अवधेश कुमार

भक्तिकाल

वाणी और विचार

सम्पादक

डॉ. राजेन्द्र यादव

अवधेश कुमार

विजया बुक्स

प्रकाशक
विजया बुक्स
1/10753, गली नं. 3, सुभाष पार्क,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
फोन : 9910189445
Email : vijyabooks@gmail.com

© सम्पादक

प्रथम संस्करण : 2017

ISBN : 978-93-81480-87-8

मूल्य : 695/-

मुद्रक
विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

अनुक्रम

□ प्रस्तावना

□ भूमिका

1. भक्तिकाव्य का रचना-संसार प्रो. वीरेन्द्र मोहन 15
2. इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिन्दुन वारिए
प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी 19
3. कबीर का समाज दर्शन प्रो. चन्दा बैन 33
4. 'रामचरितमानस' की वर्तमान सांस्कृतिक भूमिका डॉ. पंकज चतुर्वेदी 39
5. भक्ति साहित्य का समाज दर्शन डॉ. राजेन्द्र यादव 57
6. कबीर का समन्वयवाद डॉ. आशुतोष 66
7. कबीर की प्रासंगिकता का प्रश्न डॉ. हिमांशु कुमार 71
8. संत रविदास की भक्ति में बेगमपुर की अभिव्यक्ति
डॉ. अरविन्द कुमार 76
9. भक्तिकाल : मीराबाई और स्त्री संघर्ष डॉ. मनीष कुमार 82
10. मीराबाई : जीवन और भक्ति सन्दर्भ डॉ. छबिल कुमार मेहेर 90
11. भ्रातृत्व के आदर्श : राम और भरत डॉ. सरोज गुप्ता 97
12. रामकथा का कालजयी ग्रन्थ 'श्रीरामचरितमानस' डॉ. घनश्याम भारती 102
13. सूरदास और उनके काव्य में भक्ति की लहरें! अवधेश कुमार 106
14. कबीर : सामाजिक समरसता के क्रांतिकारी संत
डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा 119

कबीर का समाज दर्शन

प्रो. चन्दा वैन

ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग साधन के दो रूप हैं। सगुण भक्ति के विपरीत निर्गुण अर्थात् ज्ञान मार्ग पर चलने वाले आचार्य शंकर आदि ने ज्ञान के अनुभूति पक्ष पर बल दिया। 'अहं ब्रह्मास्मि' कर देने मात्र से वाक्य में सार्थकता दिखाई नहीं देती जब तक कि यह ज्ञान अनुभव में पर्यवसित नहीं हो जाता। सच्ची भक्ति का संबंध हृदय की अनुभूति से है बाहरी आडंबर पूजा विधान, कर्मकांड आदि से नहीं यह बात जितनी पांडित्य के लिए आवश्यक है उतनी ही शास्त्रों से विरत कबीर भी भली-भाँति जान गए थे। भक्ति में ज्ञान मार्ग को आचार्य शंकर जैसे मनीषियों ने प्रतिष्ठित किया। इसका आरंभिक रूप उपनिषदों में प्राप्त होता है। शंकर के इसी मत पर भक्तिकाल में ज्ञानमार्गी शाखा का प्रतिनिधित्व करते कबीर दिखाई देते हैं।

संत कबीरदास का समय संस्कृतियों धार्मिक निष्ठाओं, मान्यताओं की टकराहट का समय था सभी संप्रदायों कही जाने वाली जातियाँ अपने-अपने पिंजरों के संकुचन में कैद हो रहीं थी चाहे वे मौलवी हों अथवा पांडे इन धर्म के ठेकेदारों ने दोनों धर्मों को नुकसान पहुँचाया। मूर्ति पूजक एक समुदाय अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करता तो दूसरा अपनी श्रेष्ठता में कल्लेआम कराता। ऐसे समय में कबीर का आविर्भाव होता है। अगर देखा जाए तो- "कबीर का सामाजिक दर्शन वस्तुतः भक्ति परक है जो ईश्वर के सन्दर्भ में एक औचित्यपूर्ण समाज व व्यक्ति की कल्पना करता है जिसमें सम्पत्ति, सत्ता एवं जन्मगत आधार पर गुण व व्यवसाय सम्बन्धी भेद कोई मायने नहीं रखते। एक सन्त के रूप में वे ब्रह्म और जीव की एकात्मक के आधार पर समाज में व्यक्तियों के बीच स्वतंत्रता, समानता व भाई-चारे की बात करते हैं उनके चिन्तन का सारतत्त्व निर्गुण ब्रह्म की प्रेम भक्ति है। समता, सामाजिक न्याय व साम्प्रदायिक सदभाव का उनका दर्शन वस्तुतः उनकी निर्गुण प्रेम-भक्ति का उपोत्पाद है।"¹

कबीर भक्तिकाल की निर्गुणधारा के कवि माने जाते हैं। भारतीय धर्मसाधना के इतिहास में कबीर महान विचारक, ज्ञानी, भक्त, समाज सुधारक और प्रतिभाशाली व्यक्ति भी हैं। जिस समय कबीर का आविर्भाव होता है, उस समय समाज में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक इत्यादि क्षेत्रों में अराजकता का वातावरण देखा जा रहा था। कबीरदास ने समाज में फैली बुराईयों का उन्मूलन करने का प्रयास किया और तत्कालीन समाज में व्याप्त बुराईयों, परम्पराओं पर निर्मम प्रहार किया। कबीरदास समाज में रहने वाले सभी व्यक्तियों को चाहे हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सभी को एक मानते थे। उन्होंने समाज में फैले बाह्यडम्बर एवं रूढ़िवादी परम्पराओं को नकारा है; क्योंकि उनका संपूर्ण काव्य सहानुभूति का नहीं बल्कि स्वानुभूति का है। इसी संदर्भ में रामकुमार वर्मा का कथन है “सच्चा सुधारक समाज में नये मार्ग का प्रदर्शन करने की अपेक्षा अंधविश्वास में पड़े हुए मनुष्यों को तर्क द्वारा जागृत करना अधिक आवश्यक समझते हैं। कबीर स्वाधीन विचार के व्यक्ति थे।” काशी में हिन्दू धर्म के प्रधान केन्द्र में कबीर के सिवा और कौन साहस कर पूछ सकता था कि- “जो तुम बाम्हन बाम्हनि जाये, और राह तुम कोह न आये” यदि काली और सफेद गाय के दूध में कोई अंतर नहीं होता तो फिर उस विश्व-बन्धु की सृष्टि में जाति-कृत भेद कैसा? ‘कोई हिन्दू कोई तुरके कहावै एक जमीं पर रहिए’ सत्य तो यह है कि सभी परमेश्वर की सन्तान हैं। कबीर की यही समदृष्टि उन्हें सार्वभौमिक बना देती हैं। स्मरण रखना चाहिए कि भक्तियोग के उत्थान के साथ कितने अन्य महात्माओं ने भी शूद्रों को स्वीकार किया था, परन्तु जाति-विभाग हेय और हानिप्रद हैं। ऐसी घोषणा करने का साहस कबीर के पहले किसी भी ने नहीं किया था।”²

इस तरह कबीर ने सामाजिक विषमताओं, कट्टरताओं, अंधविश्वास, जाति-पाँति, बाह्यडम्बर, छुआछूत जैसी सभी बुराईयों का कड़ा विरोध करते हुए समाज को एक सभ्य समाज बनाने का आह्वान किया। जिस समय कबीर का जन्म हुआ उस समय समाज में अनेक कुरीतियाँ फैली हुई थी, उन बुराईयों के अंतर्गत वर्णव्यवस्था एवं जातिगत भेदभाव पूरे समाज में व्याप्त था। वर्णव्यवस्था के रहते समाज अनेक जाति एवं उपजातियों में विभाजित था। समाज में ब्राह्मण वर्ग सर्वोपरि था एवं धर्मशास्त्र का नियामक था। इस व्यवस्था ने समाज में उच्च एवं निम्न दो वर्ग ऐसे थे जो कभी नहीं मिल सकते। चूँकि कबीरदास जुलाहा जाति के थे और वह जातिभेद को भली-भाँति समझ गये थे। उन्होंने हिन्दू समाज की वर्णवादी व्यवस्था को तोड़कर एक जाति, एक समाज का स्वरूप दिया। क्योंकि पथभ्रष्ट समाज को उचित मार्ग पर लाना ही उनका प्रधान लक्ष्य था। कबीर ने ब्राह्मण और शूद्र के मध्य जातिभेद को व्यर्थ माना है वे इस पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं-

“एक बूँद एकै मल मूतर एक चाम एक गूदा।
एक जोति से सब उत्पन्नां कौन ब्राह्मण कौन सूदा।।”³

इस तरह कबीर ने जाति-पाँति का विरोध करके समाज में सभी को एक माना है, क्योंकि सभी व्यक्तियों की सृष्टि एक ही ईश्वर से हुई हैं अतः इस अनुभव को धारण करने में ही मानवता का हित निहित है। कबीर ने जाति-पाँति के विरोध के साथ ही मूर्तिपूजा का भी खंडन किया है। कबीर ने हिन्दू समाज में व्याप्त मूर्तिपूजा एवं बाह्य आडम्बरों को व्यर्थ बताया है, उन्होंने कहा कि किसी भी पत्थर को पूजकर वह ईश्वर का रूप नहीं ले लेगा। कबीर के अनुसार यह पत्थर व्यक्ति को कुछ नहीं दे सकता अगर पत्थर को ही पूजना है, तो पत्थर से बनी उस चक्की को पूजिए जो सारे संसार का पेट भरती है। इसी तरह उन्होंने मूर्तिपूजा के साथ ही खुदा को पुकारने के लिए जोर से आवाज लगाने पर कबीर ने गहरा व्यंग्य किया है-

“पाहन पूजै हरि मिलै, तो मैं पूँजू पहाड़।
या तो यह चक्की भली, पीस खाये संसार।।”⁴

इसी तरह वह मुसलमानों से पूछते हैं कि-

“काँकर पाथर जोरिकै, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला लांग दै, क्या बहरा हुआ खुदाय।।” -कबीर

कबीर ने समाज में फैली जड़ताओं का विरोध करते हुए उस समाज में उच्च पद पर आसीन ब्राह्मणवाद का भी प्रतिकार किया है। ब्राह्मणों को वेदशास्त्र का ज्ञान था लेकिन कबीर ने इस झूठे ज्ञान को भी नकारा है तथा उन्होंने ब्राह्मणों की तथाकथित उच्चता और जनविरोधी रूख पर भी करारा व्यंग्य किया है। कबीर के अनुसार ऊँच-नीच, छुआछूत को धर्म ने कहाँ पैदा किया, सभी मानव एक समान हैं। इस तरह कबीर ने ब्राह्मणवाद के साथ ही उनकी पोथियाँ एवं वेदपुराणों के ज्ञान को कोरा एवं अतार्किक माना है। क्योंकि उस समय शिक्षा का अधिकार केवल उच्च वर्ग को था। उन्होंने वेदपुराणों के ज्ञान से आपने को ज्ञानी मानते थे एवं समाज के सर्वेसर्वा भी। कबीर ने इस प्रकार के झूठे, कोरे एवं अतार्किक ज्ञान को व्यर्थ माना, वे इन पोथियों एवं वेदपुराणों को नदी में बहाने की बात करते हैं इस तरह कबीर ने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता एवं उनके झूठे ज्ञान का कड़ा विरोध किया है-

“जो तू वामन बमनी जाया। तो आन वाट है काहे न आया।।”⁵

इस तरह कबीर ब्राह्मणों को पाखंडी, विवेकहीन एवं अज्ञानी बताकर उनका खुला प्रतिकार करते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है- “कबीरदास का पंडित बहुत अदना आदमी है। स्वर्ग और नरक के सिवा और कुछ जानता ही

नहीं, जात-पात और छुआछूत का अंध उपासक है, तीर्थ स्नान और व्रत, उपवास का ढूँढ समर्थक है, तत्वज्ञानहीन, आत्मविचार, विवेक, बुद्धिहीन, अटूट गँवार।”⁶
इसी तरह कबीर ने ब्राह्मणों के कोरे एवं झूठे ज्ञान, वेदपुराणों, पोथियों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं-

“कबीर पदिवा दूरि करि, पोथी देय बहाय।
बावन आखर सोध कर, ररै ममै चित लाय।”⁷

कबीर ने समाज में सामाजिक कुरीतियों की आड़ में तत्कालीन समाज में हो रही धर्म के नाम पर हो रही हिंसा का भी विरोध किया है। कबीर के अनुसार जिस हिंसा से बेजुबान जानवरों की हत्या की जा रही थी, वे उस हिंसा के विरोधी थे। यह हिंसा हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों धर्मों के प्रचलन में थी, और धर्म की आड़ में मासूम जानवरों की हत्या की जाती थी। धर्म के द्वारा जो हिंसा समाज में होती है यदि यह धर्म है तो अधर्म किसे कहेंगे। इस प्रकार कबीर मुल्लाओं द्वारा की जाने वाली हिंसा का प्रतिकार करते हैं-

“कुकड़ी मारै बकरी मारै, हम हक-हक करि बोले।
सबै जीव साई के प्यारे, उबरहु किस बोले।”⁸

इसी तरह उन्होंने माँस खाने वालों को फटकारा है वे कहते हैं-

“बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जे नर बकरी खाते है, ताको कौन हवाल।” -कबीर

कबीरदास ने इस संसार में धन जोड़ने की माया को भी व्यर्थ बताया है। चूँकि कबीर ने माया के विविध रूपों का उल्लेख किया है, परन्तु उन्होंने धन इकट्ठा करने वाली माया को संसार में उस माया के प्रति तृष्णा, लोभ पर करारा व्यंग्य किया है। कबीर कहते हैं कि इस संसार में तृष्णा के कारण ही लोग धन को एकत्रित करते-करते अपना जीवन गवाँ देते हैं, इसलिए कबीर ने तन और धन का गर्व करना मूर्खता बताया है। धन तो सांसारिक वस्तु है जब तक इस संसार में मनुष्य का जीवन है तब तक वह धन कमाने की लालसा रखता है। कबीर ने धन को माया का प्रतीक इसलिए माना है क्योंकि धन, झूठ, फरेब से इकट्ठा किया जाता है-

“कबीर सो धन संचिये, जो आगै कूँ होइ।
सीस चड़ायै पोटली, ले जात न देख्या कोइ।”⁹

इस तरह कबीर ने समाज के सभी ऐसे पक्षों एवं बुराईयों का विरोध किया, जो समाज की स्थिति को और भी दयनीय, जर्जर बनाती जा रही है। इन्हीं सब

कुरीतियों के रहते कबीर ने एक ऐसे समाज का स्वप्न देखा, जिसमें न कोई छोटा, न बड़ा, न कोई गरीब, न अमीर हो, सभी मनुष्य एक समान हो। पूरा समाज जातिहीन, शोषणहीन हो। समाज सुधारक कबीर के महत्व को स्वीकारते हुए मैनेजर पाण्डेय कहते हैं- “कबीर केवल अपने युग की चिंता के कवि नहीं, वे भारत के अतीत की तेजस्वी ज्ञान धारा और भविष्य की संभावनाओं के भी कवि हैं। यही कारण है कि आधुनिक भारतीय साहित्य और संस्कृति की अग्रगामी परम्परा में कबीरत्व अनेक रूपों में विद्यमान हैं। वह एक ओर कबीर-संगीत की उस परम्परा में है। जिससे साधारण जनता हजार कठिनाईयों के बीच जीने की शक्ति पाती है तो दूसरी ओर वह साहित्य में अपने समय की विसंगतियों को पहचानने और साधारण जनता के दुःखदर्द से हमदर्दी अनुभव करने की दृष्टि देता है।”¹⁰ कबीर ने संसार की नश्वरता को भी व्यक्त किया है, क्योंकि यह संसार विराटता और प्रवाहमयता में जितना सुन्दर है लेकिन कितना क्षणिक और नश्वर भी हैं। यह संसार जिसके प्रति मनुष्य कितना परिवर्तनशील एवं अस्थिर हैं, यह एक ही क्षण में मीठा और दूसरे ही क्षण खारा हो जाता है। कबीर ने संसार की नश्वरता को व्यक्त करते हुए कहते हैं-

“कबीर पांणी केरा बुदबुदा, इसी हमारह जाति।
एक दिन छिपि जाहिंगे, तारे ज्यूँ परभाति।।”¹¹

इन विषमताओं के होते हुए भी कबीर ने समाज के सभी मनुष्यों को कई उपदेश दिये, इन उपदेशों के द्वारा वह अपनी करनी को सुधार सके। कबीर ने साधु संगति, विषय वासनाओं, ईश्वर की भक्ति, गुरु-उपदेश, नैतिकता आदि का संदेश दिया है, वे कहते हैं कि संसार में साधु संगति बुरे व्यक्ति को भी अच्छा बना देती हैं इसलिए सज्जनों का भूलकर भी परित्याग नहीं करना चाहिए। वहीं दूसरी ओर वेशधारी साधु से बचने के लिए कहते हैं। क्योंकि ऐसा साधु उस सफदे बगुले के समान हैं जो बाहर से कुछ और अंदर कपट होता है। इसीलिए कबीर ने ऐसे ढोंगी साधुओं से बचने के लिए कहा है। “कबीर का जाति-पाँति का विरोध भक्तों के दायरे तक ही सीमित नहीं है इसे वे बृहद् समाज के दायरे तक ले जाते हैं। वे कहते हैं कि एक ही पवन एक ही पानी और एक ही जाति से सारा संसार बना है। सभी बर्तन एक ही होता है।”¹²

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि कबीर ने समाज को निरंतर सभी बाह्य दिखावे एवं कुरीतियों, रूढ़ि परम्पराओं से दूर रखने का प्रयत्न करते रहे। उन्होंने समाज में रह रहे संकीर्ण मानसिकता के लोगों को आईना दिखाया और उनमें जागरूकता एवं नैतिकता के गुणों का संचार किया। कबीर ने समाज में सभी पहलुओं, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पक्षों पर अपनी दृष्टि डाली, जिसके रहते

पूरा समाज अस्त-व्यस्त था। इस तरह कबीर ने समाज की सुख-सुविधाओं को अच्छे एवं बुरे कर्मों का परिणाम बताते हुए एक सुंदर समाज की कल्पना करने लगे। क्योंकि जिस समाज में व्यक्ति आचरणशील, सहज, नैतिक जीवन व्यतीत करने वाले और भेद-भाव की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर विश्वात्मा में तादाम्य करने वाले हो जायेंगे वह समाज स्वयं ही एक आदर्श समाज बन जायेगा, इसी कारण कबीर को समाज सुधारक कहा जाता है।

विभागाध्यक्ष, भाषा विज्ञान
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर, मध्यप्रदेश

Email- drchandabain1@gmail.com

Mob. No.-9479949601

संदर्भ ग्रंथ :

1. रामगोपाल सिंह, विकल्प की तलाश (बुद्ध से अम्बेडकर तक) प्रकाशन नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 337 चौड़ा रास्ता, जयपुर, पृष्ठ 108
2. राम कुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2010, पृष्ठ 265
3. संपा. डॉ. श्याम सुन्दरदास, कबीर ग्रन्थावली, प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृष्ठ 92
4. कबीर, संतवानी संग्रह, प्रकाशन वेलेडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, पृष्ठ 58
5. संपा. डॉ. श्याम सुन्दरदास, कबीर ग्रन्थावली, प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृष्ठ 79
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2004, पृष्ठ 108
7. संपा. डॉ. श्याम सुन्दरदास, कबीर ग्रन्थावली, प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं. 1987, पृष्ठ 66
8. संपा. रामकिशोर शर्मा, कबीर ग्रन्थवली, श्यामा प्रकाशन, पृष्ठ 84, पद 62
9. डॉ. पुष्पपाल सिंह, कबीर ग्रन्थावली सटीक, अशोक प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली, पृष्ठ 170
10. नामवर सिंह प्रधान सं., आलोचना (त्रैमासिक पत्रिका) 2000, सहशताब्दी, अंक अप्रैल-जून, पृष्ठ 281
11. डॉ. माता प्रसाद गुप्त, कबीर ग्रन्थावली, साहित्य भवन, इलाहाबाद, पृष्ठ 12, साखी 14
12. रामगोपाल सिंह, विकल्प की तलाश (बुद्ध से अम्बेडकर तक) प्रकाशन नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 337 चौड़ा रास्ता, जयपुर, पृष्ठ 117